स्कूल की चार्टगाथा

कालू राम शर्मा

इस आलेख में लेखक स्कूली शिक्षा में सीखने–सिखाने की सामग्री के बारे में बच्चों एवं शिक्षकों के द्वारा तैयार की जानेवाली सामग्री के संदर्भ में अपने अनुभवों व अवलोकनों के माध्यम से यह तथ्य रेखांकित करना चाहता है कि इसका पढ़ने–पढ़ाने में कोई खास उपयोग या फायदा नहीं हो पा रहा है।

हाल ही शहर के एक स्कूल में जाने का मौका मिला। स्कूल का भवन बढ़िया–सा लग रहा था। अन्य सुविधाएं भी ठीक थीं। स्कूल के बरामदे की दीवारों पर एक नज़र डाली तो कई तरह के रंग–बिरंगे चार्ट्स लगे पाए गए। जब कमरे में गए तो वहां की सारी दीवारें भी चार्ट्स से अटी पड़ी थीं। सरसरी तौर पर देखने पर दृश्य काफी लुभावना लग रहा था। चहलकदमी कर रहे बच्चों से पूछा तो वे बताने लगे कि ये सभी चार्ट्स उनके शिक्षक ने उनसे बनवाकर लगवाए हैं। बच्चों के चेहरों पर गर्वमय मुस्कान थी। जब हम चार्ट्स देख रहे थे तो बच्चों व शिक्षकों में एक प्रकार के आत्मसंतोष के दर्शन हो रहे थे। चार्ट्स जो बनाए गए थे, वे पेंटिंग के हिसाब से लाजवाब लग रहे थे। बच्चों ने बड़ी मेहनत से जो बनाए थे! मगर जब चार्ट–दर–चार्ट बारीकी से देखने लगा तो समझ में आया कि इन चार्ट्स में शिक्षा की दकियानूसी विचारधारा के दर्शन होते हैं। दीवारों पर सजे इन चार्ट्स ने कई सारे सवालों को जन्म दिया।

दरअसल, हमारे यहां स्कूल चाहे सरकारी हों या अंग्रेजी का राग अलापने वाले निजी स्कूल, हर कहीं कमोबेश इसी प्रकार के चार्ट्स से दीवारें अटी हुई मिलती हैं। अधिकाशंतः भाषा, विज्ञान, भूगोल, पर्यावरण अध्ययन आदि विषयों पर बनाए गए चार्ट्स तथाकथित पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान के ईर्द–गिर्द ही होते हैं। जिस स्कूल में मैं गया था, वहां भी इसी प्रकार के चार्ट्स चिपके हुए थे जिनका अपने संदर्भ से कोसों दूर का रिश्ता नहीं था। कुछ चार्ट्स बाजार से लाकर भी लगाए गए थे। इनमें राज्य, राष्ट्रीय फूल, पशु, पक्षियों के रंगीन चित्र थे। कुछ चार्ट्स वर्णमाला, बारहखड़ी, गिनती, पहाड़े, फूलों, फलों तथा शरीर के बाहरी व आंतरिक अंगों आदि के लगे थे।

बहरहाल, इन चित्रों को देखने पर एक सवाल जेहन में आया कि आखिर चार्ट्स के विषय कैसे चुने जाते होंगे? जब मैंने शिक्षकों से बातचीत की तो वे बताने लगे कि किताबों में से ही कुछ चित्र, परिभाषाएं, सूत्र, समीकरण या कोटेशंस बच्चे बनाते हैं। उन्होंने बताया कि हमें टीएलएम के नाम कुछ राशि मिलती है, उसमें से कुछ तो रेडीमेड चार्ट्स बाजार से खरीद लिए जाते हैं। कुछ ड्राइंग शीट्स व स्केच पेन वगैरह खरीद लिए जाते हैं। इन शीट्स का इस्तेमाल बच्चे करते हैं। उन्हें विषयों से संबंधित चित्र बनाने के लिए दिया जाता है। जब चार्ट्स बन जाते हैं तो उन्हें दीवारों पर चस्पा कर दिया जाता है।

दरअसल, चार्ट्स का शिक्षण में इस्तेमाल करना अपने आप में एक दिलचस्प प्रक्रिया हो सकती है। मगर साफतौर पर समझ में आता है कि इन चार्ट्स में जो भी बनाया जाता है वह शिक्षा के प्रगतिशील विचारों

से कतई मेल नहीं खाता। जैसे कि प्राथमिक स्कूलों की दीवारों पर लगे चार्ट्स अमूमन वर्णमाला आधारित भाषा शिक्षण की पैरवी करते हैं। इन चार्ट्स में वर्णमाला के अक्षर व तथाकथित अति सरल (बिना मात्रा वाले) शब्द लिखे होते हैं जिनका बच्चों के संदर्भ से नाता–रिश्ता ही नहीं होता। कहीं–कहीं कोई बेजान सी कविता या सूक्ति वाक्य वगैरह लिखे चार्ट्स होते हैं। इतना ही नहीं कक्षाओं में वर्णमाला का दोहराव होता दिखता है। बच्चे अ आ इ ई... क का कि की... के कुचक्र में उलझे होते हैं। इस प्रकार की प्रक्रिया के चलते बच्चे पांचवीं तक या आठवीं तक आते–आते भी ठीक से पढ़ना–लिखना नहीं सीख पाते हैं।

एक और चीज़ का जिक्र करना प्रासंगिक होगा। चार्ट्स का आज एक बाजार पैदा हो चुका है। अगर हम उन बाजारी चार्ट्स पर नज़र डालें तो पाएंगे कि ये भी शिक्षा की दकियानूसी विचाराधाराओं की वकालत करते हैं। इनमें भी वही कुछ फलों, सब्जियों, वाहनों, पशुओं, बीजों, और माध्यमिक कक्षाओं के स्तर पर विज्ञान के मॉडल, फूलों–पत्तियों, शरीर के अंगों वगैरह के चित्र होते हैं। और भी बहुत कुछ है इस बाजार में, जिसमें स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले विषयों की कुंजियों–गाइडों के साथ–साथ डीएड. व बीएड, एमएड. की कुंजियां–गाइडें आदि शामिल हैं।

कहा जा सकता है कि शिक्षा बाजार में तब्दील हो चुकी है। प्राथमिक व उच्च प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों के लिए जो चार्ट्स बाजार में मिलते हैं उनमें से एक है मानव शरीर के अंगों के चार्ट्स, जिनमें अंगों के नाम लिखे होते हैं। सवाल इस बात का है कि क्या बच्चों को अपने ही शरीर के अंगों के नाम पता नहीं हैं? मैंने कई कक्षाओं में अवलोकन किया कि इन चार्ट्स की मदद लेते हुए बच्चों से उनके अंगों के नामों को रटाया जाता है। तो कुल मिलाकर बाजार के सामने शिक्षा ऐसी मांग नहीं रख पाई जो प्रगतिशील विचाराधाराओं पर आधारित चार्ट्स बनाए। इसके उलट शिक्षा व्यवस्था पर बाजार दकियानूसी विचारों को थोपता रहता है और इस तरह से दकियानूसी विचारधारा निरंतर रूप से अपनी जड़ें फैलाती रहती है।

अगर हम एनसीएफ–2005 पर नजर डालें तो कहा गया है कि बच्चे स्कूल में अपने साथ अनुभव व ज्ञान लेकर आते हैं। अगर इस बात को लेकर आगे बढ़ें तो समझ में आता है कि बच्चों को क्या अपने ही शरीर के अंगों, हाथ, पैर, नाक, आंख आदि का ज्ञान नहीं होता? जाहिर है कि प्रशिक्षण संस्थानों से लगाकर स्कूलों तक में सीखने–सिखाने को लेकर एक प्रकार की कृत्रिमता व्याप्त है। स्कूलों में शिक्षक–शिक्षिकाएं बच्चों को शरीर के अंगों के नाम रटवाने में सारी ऊर्जा नष्ट कर देते हैं। यही हाल है प्राथमिक स्तर पर बच्चों के पढ़ने की प्रक्रियाओं का। दीवारों पर वर्णमाला, बाराखड़ी, गिनती वगैरह के चार्ट्स बच्चों के अनुभवों व पूर्व ज्ञान को ठेंगा दिखाते लगते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में असल सीखना दरकिनार रह जाता है।

आजकल टीएलएम का बड़ा बोल–बाला है। दीवारों पर लगे ये चार्ट्स टीएलएम का ही नतीजा है। टीएलएम का शब्दशः अर्थ होता है टिचिंग–लर्निंग मटेरियल। मगर टीएलएम को चार्ट्स व थर्मोकाल से मॉडल बनाने भर तक सीमित कर दिया गया है। इस प्रकार का टीएलएम भी दकियानूसी विचारधाराओं को प्रश्रय देने का ही काम करता है। मिसाल के तौर पर स्कूलों में पर्यावरण अध्ययन में महज पेड़–पौधों, फूलों, बीजों, जंतुओं आदि के चमक–दमक वाले चार्ट्स को शिक्षण का हिस्सा बनाया जाता है। सरसरी तौर पर यह देखने में अच्छा लगता है। मगर यह तो पर्यावरण अध्ययन की तासीर के खिलाफ है। जबकि बच्चों को अपने परिवेश के पेड़–पौधों व जीव–जंतुओं के अवलोकन करने व अनुभव अर्जित करने के अवसर न के बराबर मिलते हैं। पर्यावरण अध्ययन के शिक्षण में अपने आसपास के परिवेश से बेहतर टीएलएम और क्या हो सकता है।

यही हालात माध्यमिक स्तर पर विज्ञान में है। विज्ञान में बच्चे जो चार्ट्स बनाते हैं वे अधिकाशंतः अपनी

पाठ्यपुस्तक के चित्र होते हैं। मैंने स्कूल की दीवारों पर चिपके चार्ट्स में देखा कि जल चक्र, वर्षा चक्र, भोजन शृंखला के चित्र बने हैं। जब बच्चों से पूछा तो वे यांत्रिकी तौर पर तो बता पाते हैं, मगर असल में जलचक्र... आदि के बारे में वे मौन रहते हैं। भोजन शृंखला के चार्ट्स में उन्हीं चित्रों को दर्शाया जाता है जो उनकी किताबों में होते हैं। बच्चों को इस प्रकार के चार्ट्स बनाने की कवायद के अवसर न्यूनतम ही मिलते हैं कि वे अपने अनुभवों को शामिल करते हुए भोजन शृंखला के चित्र बनाएं। इसी तरह से नाइट्रोजन चक्र, कार्बन डाई आक्साइड चक्र आदि के चित्रों को पाठ्यपुस्तकों से हुबहू चार्ट्स पर उतार लिया जाता है। मगर नाइट्रोजन व कार्बन डाइ आक्साइड की समझ कहीं से कहीं तक परिलक्षित नहीं होती। प्रयोगशाला में गैस बनाने के चित्र होते हैं मगर बच्चों ने कभी भी कोई गैस बनाकर नहीं देखी। दूसरी बात यह कि चित्रों में गैस बनाने के उपकरणों को दर्शाया जाता है, वे अधिकांश शिक्षकों के संदर्भ से भी मेल नहीं खाते।

जब मैं और गहराई से सोचने लगा तो मुझे डाइट्स, याने कि जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों व शिक्षा महाविद्यालयों की याद ताज़ा हो गई। ये संस्थान शिक्षक बनाने का कार्य करते हैं जो हकीकत में स्कूलों में शिक्षण कार्य करते हैं। हमारे यहां अमूमन प्रत्येक जिले में डाइट होती है जो जिले भर में स्कूली शिक्षा में सेवापूर्व व सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य करती है। प्राथमिक स्कूलों में शिक्षक बनने के लिए जो योग्यता चाहिए उसमें डीएड (डिप्लोमा इन एज्यूकेशन) आवश्यक है। इसके अलावा जिले में जो शिक्षक शिक्षण करते हैं उनके लिए विषयगत व अन्य शैक्षिक व शिक्षणेतर मसलों पर प्रशिक्षण की जिम्मेदारी डाइट्स की होती है। इसी प्रकार, माध्यमिक व उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के संदर्भ में बीएड. व एमएड. की डिग्री शिक्षा महाविद्यालय देते हैं। कुल मिलाकर डीएड, बीएड वगैरह की डिग्री प्राप्त कर शिक्षक बनने के मार्ग तो प्रशस्त हो जाते हैं मगर वे उसी परंपरा को अपनाते हैं जो उनके साथ प्रशिक्षण के दौरान अपनाई गई है।

टीएलएम बनाम बच्चों का सृजन

यहां मैं उल्लेख करना चाहूंगा एक उदाहरण के माध्यम से। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत शिक्षक जब प्रशिक्षण में आते तो उन्हें स्वतंत्र ढंग से सोचने व वह सब कुछ करने के अवसर दिए जाते जो उन्हें अपने स्कूल में बच्चों के साथ करना होता। शिक्षकों को सवाल करने के पूरे अवसर मिलते। प्रशिक्षण के दौरान वे तरह–तरह के चार्ट्स बनाते व प्रशिक्षण हाल में लगाते व उन पर विमर्श करते। ये चार्ट्स बाल विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों के चित्रों की नकल नहीं होते बल्कि जो उन्होंने समझा व किया उस पर आधारित होते। साथ ही उन चार्ट्स में संदर्भ साफतौर पर झलकता। कक्षा का माहौल जीवंत हो उठता।

जब शिक्षक अपनी कक्षाओं में जाते तो प्रशिक्षण के दौरान जो भी आत्मसात किया होता वह बच्चों की कक्षाओं में उतरता। फूलों के अध्ययन के दौरान बच्चे तरह–तरह के फूलों को खोलने का अभ्यास करते व उन फूलों को चार्ट्स पर या तो सुईं से सिलकर या चिपकाकर चार्ट्स को दीवारों पर लगा देते। पत्तियों के अध्ययन के दौरान वे तरह–तरह की पत्तियों को अपने परिवेश से तोड़कर लाते व उन्हें सुखाकर चार्ट्स पर चिपकाते व दीवारों पर लगाते। होशंगाबाद विज्ञान की कक्षाओं के कुछ और उदाहरण देखते हैं। कक्षा में दूरी नापने का अध्याय चल रहा था। सभी बच्चों ने अपनी कक्षा की लंबाई को मापा व उसका चार्ट बनाया। इसमें उन सभी आंकड़ों को लिखा गया है। जब सामूहिक चर्चा होती तो चार्ट्स पर बच्चों द्वारा ली गई मापों पर चर्चा होती। संयोग व संभावित नामक अध्याय में बच्चों ने चित–पट का खेल मैदान में खेला व उसका चार्ट बनाकर कक्षा में लगा दिया। इस चार्ट में वास्तविक आंकड़ों को लिखा गया है। बेशक, इन चार्ट्स में देशज ज्ञान की खुशबू होती। जब अगला अध्याय शुरू होता तो पुराने चार्ट्स हटा दिए जाते व उस अध्याय के चार्ट्स चस्पा कर दिए जाते जो कक्षा में चल रहा है।

एक तरह से शिक्षक बनाने के लिए हमारे शिक्षा तंत्र में प्रशिक्षण पाना ज़रूरी तो है मगर इन प्रशिक्षणों में भी शिक्षा के प्रगतिशील विचारों को आज भी स्थान नहीं मिल पाया है।

अगर इन शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों पर नजर डालें तो वहां की दीवारों पर भी कमोबेश यही नजारा देखने को मिलता है। प्रशिक्षण संस्थानों की दीवारों पर जो चार्ट्स लगे होते हैं वे भी अमुमन इन्हीं विषयों के इर्द–गिर्द और लगभग वैसे ही होते हैं जैसे स्कूलों में बच्चों के द्वारा बनाए जाते हैं। लेसन प्लान जो बनाए जाते हैं उनमें भी चार्ट्स का खूब इस्तेमाल होता है। सेवाकालीन शिक्षकों को टीएलएम का प्रशिक्षण ये संस्थाएं देती आई हैं। अगर आप इन प्रशिक्षण संस्थानों में झांककर देखें तो वहां भी स्कूल से फर्क नजर नहीं दिखाई देता। दूसरे ढंग से कहा जाए तो जो शिक्षकों ने प्रशिक्षण के दौरान इन संस्थानों से पाया उसी का अनुसरण अपने स्कूलों में करते हैं। स्कूलों में वही प्रतिबिंबित होता है जो शिक्षकों ने प्रशिक्षणों में पाया है। बात सही भी है। जैसा बोएंगे वैसा काटेंगे! प्रशिक्षण में शिक्षकों के दिमाग में विचारों व अनुभवों के जैसे बीज बोए जाएंगे वही तो स्कूलों में परिलक्षित होगा। प्रशिक्षण संस्थानों में जीवंतता स्थापित करने को लेकर तो काफी चिंताएं हुई हैं मगर उसका असर परिलक्षित होता नहीं दिखता। विभिन्न शिक्षा नीतियों का गुणगान तो किया जाता है मगर उन पर अमल करने की ओर कदमताल करते हुए नहीं दिखते।

ऐसा लगता है कि शिक्षकों की तैयारी के पूर्व शिक्षक प्रशिक्षकों की तैयारी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस तैयारी का एक पहलू तो रवैयात्मक है जिसमें शिक्षक प्रशिक्षक शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के साथ किस प्रकार से पेश आते हैं। शिक्षक प्रशिक्षकों व शिक्षकों के बीच बराबरी स्थापित करने के संजीदा प्रयास नहीं होते। प्रशिक्षण संस्थानों में जो कुछ भी सिखाया जाता है वह यह कि कोई सवाल नहीं करना, जो कुछ भी बताया जा रहा है वही आखिरी सत्य है। दूसरा पहलू है विषयगत ज्ञान का शिक्षण। विषयों के सैद्धांतिक पक्षों पर भाषण तो होते हैं मगर उनमें संदर्भ स्थापित करने की कोशिशें नदारद ही होती हैं। शिक्षक प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम पूरा करना भर ही एक मकसद बन जाता है। इतना ही नहीं, व्यावहारिक ज्ञान को भी भाषणों से ही पढ़ाया जाता है। जब शिक्षक प्रशिक्षणों में व्यावहारिक ज्ञान भाषणों से पढ़ाया जाता है तो शिक्षक भी अपनी कक्षाओं में वैसा ही करेंगे और असल में यही हो भी रहा है। खासकर विज्ञान जैसे विषय में मात्र यह कहते रहना कि "यह करके सीखने" का विषय है। मगर इससे असल विज्ञान तो नहीं सीखा जा सकेगा। यही हालात भाषा को लेकर है। खासकर प्राथमिक कक्षाओं में, जहां बच्चों को पढ़ना–लिखना सिखाना एक महत्त्वपूर्ण कौशल है। मगर प्रशिक्षण संस्थानों में बच्चों को स्वतंत्र ढंग से कैसे पढ़ना–लिखना सिखाया जाए इस पर समझ बनाने व मौके पर कार्य करने के अवसर नहीं मिलते। स्वतंत्र ढंग से पढ़ने–लिखने के शिक्षकों के साथ भी यह कवायद नहीं हो पाती कि उनकी भाषायी क्षमता को विस्तार मिले। साथ ही बच्चों के साथ वे कौनसी प्रक्रियाएं की जाएं कि बच्चे एक स्वतंत्र पाठक व लेखक बन सकें, इस पर खुलकर विमर्श के अवसर भी नहीं मिलते। शिक्षा जगत में बच्चों में सृजनशीलता विकसित करने की बातें तो काफी होती हैं मगर शिक्षकों की सृजनशीलता को बढ़ाने के प्रयास न के बराबर होते हैं। यही वजह है कि जिस भावना से शिक्षक प्रशिक्षक शिक्षकों को प्रशिक्षित करता है उसी भावना के साथ शिक्षक स्कूल में अपने बच्चों के साथ पेश आते हैं।

कालू राम शर्मा : अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, देहरादून में कार्य करते हैं। शिक्षा की बुनियाद की संपादन टीम के सदस्य।